वेदस्तुतिः

श्रीनिग्रहाचार्यकृत सर्वोत्तमा टीका एवं हिन्दी अनुवाद के साथ

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

NOTION PRESS
India. Singapore. Malaysia.

ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x

First Published – 2021

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

वेदस्तुतिः

श्रीनिग्रहाचार्यकृत सर्वोत्तमा टीका एवं
हिन्दी अनुवाद के साथ

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे ।
निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्द्धताम् ।।

श्रीनिग्रहाचार्य (श्रीभागवतानंद गुरु)

--*

वेदस्तुति श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध में वर्णित है। इसे श्रुति गीता भी कहते हैं। इसमें वेदों के द्वारा भगवान् विष्णु के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत संस्करण निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा वेदस्तुति पर लिखी गयी सर्वोत्तमा टीका तथा श्रीश्रीधरस्वामी की नारसिंही टीका के हिन्दी अनुवाद के साथ है।

--*

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

मङ्गलाचरणम्

रक्ताम्बरन्त्रिगुणमूषकयानयुक्तं
मेनासुताङ्कशयनातुरबालरूपम्।
सिद्धिप्रदं सकलविघ्नहरं गणेशं
वन्दे महेशतनयं गिरिजात्मजं तम् ॥०१॥

सर्वात्मकं सकलयोगयुतं वरेण्यं
सर्पेश्वरैश्च सकलाप्लुतदिव्यदेहम्।
गौरीप्रियं त्रिविधतापविनाशदक्षं
वन्दे मुकुन्दहृदयस्थितचन्द्रचूडम्॥०२॥

संसाररोगहरविश्वप्रसिद्धवैद्यं
श्रीवत्सचिह्नपरिभूषितशेषसुप्तम्।
शम्भुप्रियं भृगुसुताहृदयेश्वरस्य
वन्दे सदाच्युतसुदुर्लभपादपद्मम्॥०३॥

अव्यक्तरूपगुणकीर्तियुतामगम्यां
संसारवारिधिसुलङ्घनपोतरूपाम्।
सर्गस्थितिप्रलयकारणहेतुभूतां
दुर्गां त्रिदेवजननीं हृदि चिन्तयामि॥०४॥

वन्दे ह्यसह्यकिरणान्वितपद्महस्तं
प्रत्यक्षजीवननिमित्तमरीचिपौत्रम् ।
योगेश्वरं सकलरोगहरं पवित्रं
सूर्यं हिरण्मयदिविस्थितब्रह्मरूपम् ॥०५॥

वेदस्तुतिः

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥०१ ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

न जितो न केनापि पराजित ऐश्वर्येण सोऽजितः । तस्माज्जयजयेति। स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति श्वेताश्वतरश्रुतिः । तस्मात्त्वं सर्वेश्वरश्च सर्वैश्वर्यसम्पन्नः स्वभावत एव। कृन्ततु सर्वजीवमोहिनीमष्टपाशबन्धकारिणीं दुरत्ययामपारगम्यां मायामेताम्। आत्मन आनन्दनिष्कलरूपप्रतिच्छिन्नोद्देश्यहेतवे भवतः प्रेरणया त्रैगुण्यविषयरज्जुभिराबद्धो विवशीकृतो जीवनिकायो मुहुर्मुहुः

परिभ्रमति। श्रुतिप्रामाण्यत्वेनावरणनाशकारणानां साधनानाञ्चोदयितोद्बोधकश्चापि भवानेकस्तिष्ठति। वयं श्रुतयोऽपि तत्त्वतस्तव वर्णनकर्मण्यसमर्थाः। स्वाध्यक्षेण प्रकृतिं विक्षोभकरीमुद्दिश्य सर्गे स्वेच्छया सगुणो विसर्गे स्वेच्छयैव व्यतिरेकेण निर्गुणो भूत्वाथवा भक्तानामनुकम्पार्थं लीलाकलेवरो यत्किञ्चिदाचर्यते भवता तमेव शकलैरनुवर्णयामहे।

जो किसी के द्वारा जीता नहीं गया, जो किसी के ऐश्वर्य के द्वारा पराजित नहीं है, वह अजित है। अतएव आपकी जय हो, जय हो। श्वेताश्वतरोपनिषत् की श्रुति कहती है कि ब्रह्म में ज्ञान, बल एवं क्रियाशक्ति स्वाभाविक ही है। अतएव आप सबों के ईश्वर हैं तथा सभी ऐश्वर्य से स्वभावतः ही सम्पन्न हैं। सभी जीवों को मोहित करने वाली, अष्टपाश में बांधने वाली, जिसको जीतना या जिसके पार जाना अत्यन्त कठिन है, ऐसी अपनी माया को नष्ट कर दीजिए। आत्मा के आनन्दमय, कालातीत रूप को आवृत्त करने के उद्देश्य से आपकी प्रेरणा के द्वारा तीनों गुणों के विषयरूपी रस्सियों से बंधा एवं विवश किया गया जीवसमूह बारम्बार भटकता रहता है। वेदों के प्रामाण्य के आधार पर आवरण के नाश में जो साधनमार्ग कारण हो सकते हैं, उनके प्रेरक एवं उद्बोधक भी एक आप ही स्थित हैं। हम श्रुतियाँ भी

तत्त्वतः आपके वर्णन में असमर्थ हैं। अपनी अध्यक्षता में विक्षोभकारिणी प्रकृति को उद्दिश्य करके सृष्टिकाल में अपनी इच्छा से ही सगुण होकर एवं संहारकाल में अपनी इच्छा से ही व्यतिरेक से निर्गुण होकर अथवा भक्तों के ऊपर कृपा करने के उद्देश्य से लीला-शरीर वाले आपके द्वारा जो कुछ भी आचरण किया जाता है, उसे ही कुछ कुछ अंशों में हम वर्णन करते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

जय जयाजित जह्यगजङ्गमावृतिमजामुपनीतमृषागुणाम्।
न हि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी निगमगीतगुणार्णवता तव ॥१॥

अजित ! आपकी जय हो; जय हो ! झूठे गुण धारण करके चराचर जीवको आच्छादित करनेवाली इस मायाको नष्ट कर दीजिये। आपके बिना बेचारे जीव इसको नहीं मार सकेंगे — नहीं पार कर सकेंगे। वेद इस बातका गान करते रहते हैं कि आप सकल सद्गुणोंके समुद्र हैं।

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया
यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वा विकृतात्।
अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं
कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥०२॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

वयं श्रुतयोऽन्येन्द्रवरुणादिदेवानपि वर्णयामः किन्तु परमोत्कर्षे मन्त्रद्रष्टार ऋषयो वयञ्च त्वां ब्रह्मरूपिणमेव यजामहे। यतो विनष्टे सर्वे भवानेवैकः शिष्यते। यथा देवकी स्तौति भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः। यथा घटादायो मृदो जायन्ते तस्मिन्नेव प्रलीयन्ते तथैव सविकारञ्जगत्त्वत्तो जायते त्वयि लीयते। किन्तु धरासमः सविकारो नास्ति भवानपित्वेकरसोऽखण्डितो निर्विकारोऽस्यभिन्ननिमित्तोपादानत्वेन। जगत्तु प्रतीयते वस्तुत इति। यथा घटादौ मृत्तिकातत्त्वं व्याप्तमस्ति तथेन्द्रादीनां वर्णनगुणानुकथनश्रुतौ वा भवानेव व्याप्तमस्ति। विचक्षणा ऋषयो यत्किञ्चिच्छोचन्ति मनसा मन्वन्ते वागभ्युद्यन्ते तत्सर्वं त्वयि स्थितं त्वद्रूपमिति निश्चितम्। यथा नरो मृदि, काष्ठौ, प्रस्तरे वा पादं न्यसेत्तत्सर्वं भूमिन्यस्त एव भवति तथैवान्य देवानां वर्णनमपि भवत एव।

हम श्रुतियाँ अन्य इन्द्र, वरुण आदि देवताओं का भी वर्णन करती हैं किन्तु परमोत्कर्ष में मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण और हम भी आप ब्रह्मरूपी का ही यजन करते हैं। सबों के नष्ट हो जाने पर केवल आप ही अवशिष्ट रह जाते हैं जैसा कि देवकी जी ने स्तुति करते

हुए कहा है - आप अकेले ही शेषसंज्ञा धारण करके आप ही बचे रहते हैं। जैसे घड़ा आदि मिट्टी से उत्पन्न होते हैं और उसमें ही लीन हो जाते हैं वैसे ही सभी विकारों के साथ यह संसार आपसे उत्पन्न होता है और आपमें ही लीन हो जाता है। किन्तु पृथ्वी के समान आप सविकार नहीं हैं अपितु आप एकरस, अखण्डित और निर्विकार हैं क्योंकि आप ही जगत् के अभिन्न निमित्त एवं उपादान कारण हैं। आपमें वस्तुतः जगत् की प्रतीति मात्र होती है। जैसे घड़े आदि में मृत्तिकात्तत्व व्याप्त है, वैसे ही इन्द्र आदि के वर्णन एवं गुणों के कथन-श्रवण आदि में आप ही व्याप्त हैं। बुद्धिमान् ऋषिगण जो कुछ भी सोचते हैं, मन से मनन करते हैं, वाणी से उद्गार व्यक्त करते हैं, वह सब कुछ आपमें ही स्थित, आपका ही स्वरूप है, यह निश्चित है। जैसे मनुष्य मिट्टी, लकड़ी, पत्थर कहीं भी अपना पैर रखे, वह सबकुछ भूमि में ही रखा हुआ होता है वैसे ही अन्य देवताओं का वर्णन भी आपका ही वर्णन है।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

द्रुहिणवह्निरवीन्द्रमुखामरा जगदिदं न भवेत्पृथगुत्थितम्।
बहुमुखैरपि मन्त्रगणैरजस्त्वमुरुमूर्तिरतो विनिगद्यसे॥२॥

ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् प्रतीत होनेपर भी आपसे पृथक् नहीं है। इसलिये अनेक

देवताओंका प्रतिपादन करनेवाले वेद- मन्त्र उन देवताओंके नामसे पृथक्-पृथक् आपकी ही विभिन्न मूर्तियोंका वर्णन करते हैं। वस्तुतः आप अजन्मा हैं; उन मूर्तियोंके रूपमें भी आपका जन्म नहीं होता।

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमल -
क्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः।
किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः
परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥०३॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययमिति श्रीमद्भगवद्गीतायाम्। एवं त्रिगुणपाशबद्धजीवनिकायमोहनीं मायां भवान् किङ्करीव क्रीडयति। तस्माद्विचारवन्तो जना भवतः कथामृतेऽवगाहयन्त्येवं कर्मजन्यपापप्रारब्धादीञ्जासयन्ति यस्माद्भवतो लीलाकथा जीवानां मायामलविनाशकर्त्री। ये महात्मान आत्मज्ञानेनान्तःकरणस्थितरागद्वेषादीञ्च देहस्य कालगतजरामरणादिविकारान् विदूरीकृतवन्तस्तेऽवच्छिन्नभगवत्स्वरूपावगाहनकर्मणा शान्तमना भवन्ति।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं कि सत्त्व, रजस् एवं तमस्, ये तीन प्रकृतिजन्य गुण हैं जो इस देह में स्थित अविनाशी देही को बांधते हैं। इस प्रकार से तीनों गुणों के पाश से बद्ध जीवसमूह को मोहित करने वाली माया से आप दासी के समान खेलते हैं। अतएव जो विचारवान् लोग हैं, वे आपकी कथारूपी अमृत में डूबकर कर्मजन्य अशुभ प्रारब्ध आदि को नष्ट करते हैं क्योंकि आपकी लीला-कथा जीवों के मायाजन्य मल का विनाश करने वाली है। जो महात्माजन आत्मज्ञान के द्वारा अन्तःकरण में स्थित राग-द्वेष आदि को एवं देह में स्थित कालगत वृद्धावस्था एवं मृत्यु आदि विकारों को दूर कर चुके हैं, वे अनवरत भगवान् के स्वरूप के अवगाहन कर्म के द्वारा शान्त मन वाले हो जाते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

सकलवेदगणेरितसद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषिजना रता: ।
त्वयि सुभद्रगुणश्रवणादिभिस्तव पदस्मरणेन गतक्लमा: ॥३ ॥

सारे वेद आपके सद्गुणोंका वर्णन करते हैं। इसलिये संसारके सभी विद्वान् आपके मङ्गलमय कल्याणकारी गुणोंके श्रवण, स्मरण आदिके द्वारा आपसे ही प्रेम करते हैं, और आपके चरणोंका स्मरण करके सम्पूर्ण क्लेशोंसे मुक्त हो जाते हैं।

दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा
महदहमादयोऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः।
पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः
सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥०४॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

ये प्राणिनः श्वासप्राणवशानुगा भवन्तमाराधयन्ति त एव सुकृतिनोऽन्यथा भस्त्रिकावदेव जीवितं तेषाम्। महत्तत्त्वाहङ्कारादयो भवतः शक्त्या सृष्टिं सृजन्ति। अन्नप्राणमनोविज्ञानानन्दकोशैर्वाहमहमिति स्फुरणां भवानेव करोति। भवता तेऽनुभूयन्ति तेषु विनष्टेष्वपि भवानवधिरूपवान् शेषीभूतस्तिष्ठति। सर्वेषु विद्यमानोऽपि निःस्पृहो निःसङ्गरूपी निषेधेन नास्तीति विधानेनास्तीत्युभाभ्यां पर एव। स्वज्ञानेन जहित्वा पूर्णाः स्वयमेव शिष्यते नान्यदिति स्वात्मनिरूपणे।

जो प्राणी श्वास एवं प्राण के वश में हैं, वे आपकी आराधना करके ही कृतार्थ होते हैं अन्यथा उनका जीवित रहना भाथी (धौंकनी) के समान निरर्थक है। महत्तत्व एवं अहंकार आदि आपकी ही शक्ति से सृष्टि की रचना करते हैं। अन्नमय, प्राणमय,

मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों के द्वारा "मैं-मैं" इस प्रकार की स्फुरणा आप ही करते हैं। आपके ही कारण वे (देहधारी) अनुभव करते हैं और उनके (देह के) नष्ट होने पर अवधिरूप से आप ही शेष बचकर स्थित रहते हैं। सबों में विद्यमान् होने पर भी आप निस्पृह, निःसंग होकर निषेध से "नहीं है" एवं विधान से "है - है" इस प्रकार दोनों से परे ही हैं। स्वात्मनिरूपण में कहते हैं - अपने ज्ञान से (अज्ञान आदि को) नष्ट करके पूर्णभावों से स्वयं ही बचता है, अन्य कुछ भी नहीं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

नरवपु: प्रतिपद्य यदि त्वयि श्रवणवर्णनसंस्मरणादिभि:।
नरहरे न भजन्ति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं तत: ॥४॥

नरहरे ! मनुष्य शरीर प्राप्त करके यदि जीव आपके श्रवण, वर्णन और संस्मरण आदि के द्वारा आपका भजन नहीं करते तो जीवों का श्वास लेना धौंकनी के समान ही सर्वथा व्यर्थ है।

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥०५॥

निग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

ऋतव्रता ऋषयो भगवत्प्राप्तिसाधनभूतानां कारणानामनेकमार्गाणामुपदेशं कुर्वन्ति। स्थूलदृष्टिवतो मणिपुरसंज्ञके दशार उदरस्थचक्रेऽग्निमये त्वामभ्यर्थयन्ति। अन्य आरुणिका नाडीपुञ्जगह्वरे हृदि स्थितं ब्रह्मसूत्रे दहराधिकरणे छान्दोग्यश्रुतौ च दहराकाशब्रह्मपुरे हृद्देश उक्तं ब्रह्म समुपासन्ति। हृदयान्निसृत्य सहस्रारं प्रति ब्रह्मबोधप्रदायिनी सुषुम्ना गच्छति। यस्तं ज्योतिर्मयं मार्गं प्राप्नोति न तस्य पुनर्भवो न जायते म्रियते वा।

पवित्र आचरण वाले ऋषियों ने भगवान् की प्राप्ति के साधनभूत कारणों के अनेक मार्गों का उपदेश किया है। स्थूलदृष्टि वाले जन दश अरों वाले मणिपुर नाम वाले चक्र में, जो पेट में स्थित है, उस अग्निमय चक्र में आपकी अभ्यर्थना करते हैं। अरुण सम्बन्धी अन्य जन नाड़ीसमूह की गुफा में, जो हृदय में स्थित है एवं जिसका ब्रह्मसूत्र के दहराधिकरण में तथा छान्दोग्य श्रुति में दहराकाश ब्रह्मपुर हृदयदेश के नाम से वर्णन है, उस ब्रह्म की उपासना करते हैं। हृदय से निकल कर सहस्रार के प्रति ब्रह्म का बोध कराने वाली सुषुम्ना नाड़ी जाती है। जो उस ज्योतिर्मय मार्ग को प्राप्त कर लेता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता है, उसका जन्म नहीं होता और उसकी मृत्यु भी नहीं होती है।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

उदरादिषु यः पुंसां चिन्तितो मुनिवर्त्मभिः ।
हन्ति मृत्युभयं देवो हृद्गतं तमुपास्महे ॥५॥

मनुष्य ऋषि-मुनियोंके द्वारा बतलायी हुई पद्धतियोंसे उदर आदि स्थानोंमें जिनका चिन्तन करते हैं और जो प्रभु उनके चिन्तन करनेपर मृत्यु-भयका नाश कर देते हैं, उन हृदयदेशमें विराजमान प्रभुकी हम उपासना करते हैं।

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया
तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः ।
अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं
विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥०६॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

देवतिर्यङ्नरादयो योनयो भवता निर्मिताः। सर्वेषु रूपेष्वव्याप्तितयापि भवानेव भासते यथा प्रविष्टोऽस्त्येव। उत्तममध्यमाधमशरीरेषु चेतनारूपेण भासते। यथा वह्निः काष्ठपरिमाणानुसारेण लघुविस्तृतादि संज्ञाभिर्लक्ष्यते तथैव नानायोनिषु हृद्देशे स्थितो भवानपि। तस्मादत्र सन्तजना

बाह्यक्षोभजन्यविकारान् हित्वा हेतुजालमुपेक्ष्याखण्डरसं ब्रह्म निर्वाणपदस्थितं पश्यन्त्याराधयन्ति च।

देव, पशु एवं मनुष्य आदि योनियां आपके द्वारा बनायी गयी हैं। सभी रूपों में व्याप्ति भाव से आप ही प्रतिभासित होते हैं मानो आप उसमें प्रविष्ट हो गये हों। उत्तम, मध्यम एवं अधम शरीरों में चेतनारूप से आप प्रतीत होते हैं। जैसे लकड़ी के परिमाण के समान आग कम या अधिक आदि संज्ञाओं के द्वारा लक्षित होती है, वैसे ही अलग अलग योनियों में हृदयदेश में स्थित आप भी प्रतिभासित होते हैं। अतएव सन्तजन बाह्य क्षोभजन्य विकारों को नष्ट करके हेतुजाल की उपेक्षा करके अखण्डरस, निर्वाणपद में स्थित ब्रह्म को देखते हैं तथा उसकी आराधना करते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

स्वनिर्मितेषु कार्येषु तारतम्यविवर्जितम्।
सर्वानुस्यूतसन्मात्रं भगवन्तं भजामहे ॥६ ॥

अपने द्वारा निर्मित सम्पूर्ण कार्योंमें जो न्यूनाधिक श्रेष्ठ-कनिष्ठके भावसे रहित एवं सबमें भरपूर हैं, इस रूपमें अनुभवमें आनेवाली निर्विशेष सत्ताके रूपमें स्थित हैं, उन भगवान्का हम भजन करते हैं।

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं
तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम्।
इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं
भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥०७॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

स्वकर्मवशगो जीवः प्रारब्धभोगहेतवे नानाशरीरेषु परिभ्रमति किन्तु तत्त्वतो मिथ्यादेहावरणावृतः स तु निर्लेप एव। सर्वशक्तिधृतो भवत एव अंशरिति कथ्यते तत्त्वज्ञानिभिः। स्वरूपत्वान्नांशोऽप्यंशः कथ्यतेऽनिर्मितोऽपि निर्मितः। तस्माद्विचक्षणा भवतस्तत्त्वबोधकस्वरूपमाराधयन्त्यभयदान - कुशलयोश्चरणारविन्दयोर्ध्यानं कुर्वन्ति।

अपने कर्म के वशीभूत हुआ जीव प्रारब्धभोग करने के लिए अलग अलग शरीरों में भटकता रहता है किन्तु तत्त्वतः मिथ्या देहगत आवरणों से वह निर्लेप ही है। वह जीव आप सर्व-शक्तिमान् का ही अंश है, ऐसा तत्त्वज्ञानियों के द्वारा कहा जाता है। स्वरूप होने से अंश न होने पर भी अंश कहते हैं, निर्मित न होने पर भी निर्मित कहते हैं। अतएव बुद्धिमान् जन आपके तत्त्वबोधक स्वरूप की आराधना करते हैं एवं अभयदान में

कुशल आपके युगलचरणकमल का ध्यान करते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम्।
त्वदङ्घ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्तय ॥७ ॥

मेरे परमानन्दस्वरूप स्वामी ! मैं आपका अंश हूँ। अपने चरणोंकी सेवाका आदेश देकर अपनी मायाके द्वारा निर्मित मेरे बन्धनको निवृत्त कर दो।

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥०८ ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

परमात्मतत्त्वबोधोऽयं सर्ववस्तुषु दुर्लभः। तद्बोधनहेतवे नानाभावगुणरूपसंयुतानवतारान् गृह्णाति भवान्। स्वावतारेष्वमृतसागररादप्यधिकं माधुर्यं वितरसि भक्तजनेषु। तल्लीलामृतेऽवगाह्य जना गतक्लमा आनन्दपूर्णा भवन्ति। न मोक्षमिच्छन्ति विहाय तव कथामृतं केचन स्वर्गादीनाञ्च

का कथा ? सर्वं गृहदारसुतानपि परित्यज्य परमहंसवृत्तिं धारयित्वा ते भक्ताः कथामात्रोपजीविनो भवन्ति।

यह परमात्मबोध सभी वस्तुओं में अत्यन्त दुर्लभ है। उसके बोध हेतु विभिन्न प्रकार के भाव, गुण एवं रूपों से युक्त अवतारों को आप धारण करते हैं। अपने अवतारों में अमृतसागर से भी अधिक माधुर्य का वितरण भक्तजनों में करते हैं।

उस लीलामृत में अवगाहन करके लोग सभी सन्तापों से मुक्त होकर आनन्द से पूर्ण हो जाते हैं। कुछ भक्त तो ऐसे भी हैं कि आपके कथामृत को छोड़कर मोक्ष की कामना भी नहीं करते, फिर शेष स्वर्ग आदि की क्या बात करें ! अपने घर, पत्नी, पुत्र आदि को भी छोड़कर परमहंस की वृत्ति को धारण करके वे भक्त कथा को ही अपना एकमात्र जीवनोद्देश्य बनाकर रहते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥८॥

कोई-कोई विरले शुद्धान्त:करण महापुरुष आपके अमृतमय कथा-समुद्रमें विहार करते हुए परमानन्दमें मग्न रहते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको तृणके समान

तुच्छ बना देते हैं।

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियव -
च्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च।
न बत रमन्त्यहो असदुपासनयात्महनो
यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥०९॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

शरीरस्य सार्थकता नारायणस्य कथामृतपानेऽर्चनादिषु भवति। यदा देहबद्धो जीवो भवतोऽनुगामी भवति तदात्मा सत्सुहृदवदाचरति। भवानेवाकारणकरुणावरुणालयस्तं जीवात्मानमुद्धर्तुं तत्परः। परञ्च सख्यादिभावैस्त्वामपूज्य देहारामभोगेषु ये विषयासक्ता भवन्त्यसज्जीवने रमन् रमयञ्च देहयाजिन आत्मघातिनो भवन्ति। फलस्वरूपेण कीटपश्वादियोनिषु नारकीयेषु भ्रमन् दुःखं प्राप्नुवन्ति जन्ममरणचक्रे।

शरीर की सार्थकता नारायण के कथामृत का पान करने एवं अर्चना आदि से होती है। जब देह में बद्ध जीव आपका अनुगमन करता है तब आत्मा अच्छे सुहृत् के समान व्यवहार

करती है। आप भी अकारण ही करुणा-कृपा के समुद्र जीवात्मा के उद्धार हेतु तत्पर रहते हैं। और भी जो सख्य आदि भावों के द्वारा आपकी पूजा न करके शरीर को प्रसन्न करने वाले भोगों ने विषयासक्त होकर रहते हैं, असत् रूपी जीवन में रमण करते एवं कराते हुए देह की ही पूजा करते हैं, वे आत्मघाती होते हैं। फलस्वरूप कीट, पशु आदि की नारकीय योनियों में भटकते हुए जन्ममरण के चक्र में दुःख को प्राप्त करते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह।
कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति ॥९॥

आप जगत् के स्वामी हैं और अपनी आत्मा ही हैं। इस जीवनमें ही मेरा मन आपमें रम जाय। मेरे स्वामी ! मेरा ऐसा सौभाग्य कब होगा, जब मुझे इस प्रकारका मनुष्यजन्म प्राप्त होगा ?

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि य -
न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥१०॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

विचक्षणा यतयो प्राणमन इन्द्रियादीन्नियम्य योगाभ्यासेन हृदये भवन्तं ध्यायन्ति। ते यत्पदं प्राप्नुवन्ति तत्पदं वैचित्र्येन भवतो वैरिण अपि लभन्ते स्मरणगौरवात्। या नार्यस्त्वं सगुणं कामरूपिणं मत्त्वा शेषसमलम्बस्थूलभुजदण्डयोः प्रति कामातुरा भवन्ति ते अपि तदेव पदं प्राप्नुवन्ति यत्पदं वयं श्रुतयो लभामहे यस्मात् समदृग्भवान्।

बुद्धिमान् संन्यासी जन प्राण, मन एवं इन्द्रियों का नियमन करके योगाभ्यास से हृदय में आपका ध्यान करते हैं। वे जिस पद को प्राप्त करते हैं, वही पद विचित्रता से आपके वैरियों को भी प्राप्त होता है, क्योंकि वे भी आपका स्मरण करते हैं (यह आपके स्मरण का महत्व है) जो स्त्रियां आपको कामरूपी सगुण मानकर शेषनाग के समान लम्बे एवं मोटे भुजदण्डों के प्रति कामातुरा होती हैं, वे भी उसी पद को प्राप्त होती हैं जो पद हम श्रुतियों को मिलता है, क्योंकि आप समदर्शी हैं (आपकी दृष्टि में साधनभेद से फलभेद नहीं है)।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

चरणस्मरणं प्रेम्णा तव देव सुदुर्लभम्।
यथाकथञ्चिन्नृहरे मम भूयादहर्निशम्॥१०॥

देव ! आपके चरणोंका प्रेमपूर्वक स्मरण अत्यन्त दुर्लभ है। चाहे

जैसे-कैसे भी हो, नृसिंह ! मुझे तो आपके चरणोंका स्मरण दिन-रात बना रहे।

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं
यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये।
तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः
किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥११ ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

भवानाद्यन्तरहितोऽस्ति। कालकर्मविपाकवशगो जीवो मृत्युजन्मचक्रनिमग्नः कथं भवतस्तत्त्वं ज्ञास्यति ? लोकपितामहो ब्रह्मा, निवृत्तिपरायणाः सनकादयः प्रवृत्तिपरायणा मरीच्यादयः सर्वे त्वदनुसृष्टास्त्वयैव। यदा भवान् शेते तदा त्वद्वशगो जीवः कमपि साधनमाश्रित्य त्वद्रूपं ज्ञातुं न शक्यते यस्माद्व्योमादिस्थूलजगच्च महत्तत्त्वादिसूक्ष्मजगद्विलीयत उभयोर्निर्मितदेहेन्द्रियाण्यपि प्रलीयन्ते। शास्त्राण्यपि त्वयि प्रलीयन्ते।

आप आदि एवं अन्त से रहित हैं। काल एवं कर्मविपाक के वश में फंसा हुआ जीव, जो मृत्यु एवं जन्म के चक्र में निमग्न है, वह कैसे आपको जानेगा ? लोकपितामह ब्रह्मा, निवृत्तिपरायण

सनकादि एवं प्रवृत्तिपरायण मरीचि आदि सभी आपके ही द्वारा आपके ही पीछे रचे गये हैं। जब आप सोते हैं तो आपके वश में गया हुआ जीव किसी भी साधन का आश्रय लेकर आपके रूप को जानने में सक्षम नहीं हो पाता है क्योंकि आकाश आदि स्थूल संसार एवं महत्तत्व आदि सूक्ष्म संसार विलीन हो जाता है। उन दोनों के द्वारा निर्मित देह एवं इन्द्रिय भी लीन हो जाते हैं, शास्त्र आदि भी आपमें लीन हो जाते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

क्वाहं बुद्ध्यादिसंरुद्धः क्व च भूमन्महस्तव।
दीनबन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश॥११॥

अनन्त ! कहाँ बुद्धि आदि परिच्छिन्न उपाधियोंसे घिरा हुआ मैं और कहाँ आपका मन, वाणी आदिके अगोचर स्वरूप ! (आपका ज्ञान तो बहुत ही कठिन है) इसलिये दीनबन्धु, दयासिन्धु ! नरहरि देव ! मुझे तो अपनी भक्ति ही दीजिये।

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां
विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः।
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता
त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे॥१२॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

केचन वदन्त्यसज्जगदुद्भूयतेऽन्ये वदन्ति सद्रूपदुःखानां नाशो मुक्तिः। केचन मन्यन्त आत्मा बहुविधश्चान्ये कर्मफलवशानुप्राप्तं लोकपरलोकरूपिणं व्यवहारं सत्यमिति मन्यन्ते। नास्त्यत्र सन्देह एते भ्रममूलका आरोपिता व्यपदिशन्ति। पुरुषस्त्रिगुणमय एवं भेदवादिनोऽज्ञानबुद्ध्या वदन्ति। भवानज्ञानेन परो ज्ञानरूपी यत्र नास्ति भेदवादः।

कुछ लोग कहते हैं कि यह असत् संसार उत्पन्न होता है और अन्य कहते हैं कि सद्रूप दुःखों के नाश से मुक्ति मिलती है। कुछ मानते हैं कि आत्मा बहुत प्रकार की है और अन्यजन मानते हैं कि कर्मफल से प्राप्त लोक एवं परलोक रूपी व्यवहार सत्य है। यहां कोई सन्देह नहीं कि ये सब भ्रममूलक बातें हैं एवं आरोपणबुद्धि के कारण उपदेश करते हैं। पुरुष त्रिगुणमय है, इस प्रकार भेदवादी अज्ञानबुद्धि से बोलते हैं। आप अज्ञान से परे ज्ञानरूपी हैं जहां भेदवाद नहीं है।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

मिथ्यातर्कसुकर्कशेरितमहावादान्धकारान्तर
भ्राम्यन्मन्दमतेरमन्दमहिमंस्त्वज्ज्ञानवर्त्मास्फुटम् ।
श्रीमन्माधव वामन त्रिनयन श्रीशङ्कर श्रीपते

गोविन्देति मुदा वदन् मधुपते मुक्तः कदा स्यामहम् ॥१२ ॥

अनन्त महिमाशाली प्रभो ! जो मन्दमति पुरुष झूठे तर्कोंके द्वारा प्रेरित अत्यन्त कर्कश वाद-विवादके घोर अन्धकारमें भटक रहे हैं, उनके लिये आपके ज्ञानका मार्ग स्पष्ट सूझना सम्भव नहीं है। इसलिये मेरे जीवनमें ऐसी सौभाग्यकी घड़ी कब आवेगी कि मैं श्रीमन्माधव, वामन, त्रिलोचन, श्रीशङ्कर, श्रीपते, गोविन्द, मधुपते—इस प्रकार आपको आनन्दमें भरकर पुकारता हुआ मुक्त हो जाऊँगा।

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजा
त्सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयाऽऽत्मविदः।
न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया
स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम् ॥१३ ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

त्रिगुणात्मकं जगदिदं मनसः कल्पना एव। न केवलं त्विदं परमात्मजगद्भिन्नपुरुषश्चापि। एवं वस्तुतोऽसद्रूपी भूत्वापि भवतः सत्याधिष्ठानत्वेन सत्यमिति प्रतीयते। भोक्ताभोग्यसम्बन्धसिद्धकारणानीन्द्रियाणि जगत्यत्र सर्वमात्मज्ञानिन आत्मरूपतया सत्यमिव मन्यन्ते यथा

कटककुण्डलादिषु स्वर्णरूपेषु स्वर्णज्ञो जनः स्वर्णमेवं पश्यति न त्यजति तानि। एवं जगदात्मनि कल्पितमात्मव्याप्तमिति मत्त्वा तत्त्वज्ञा एनमप्यात्मरूपं मन्यन्ते।

यह त्रिगुणात्मक संसार मन की कल्पनामात्र है। केवल यही नहीं अपितु परमात्मा एवं जगत् से भिन्न पुरुष भी कल्पना ही है। इस प्रकार से वस्तुतः असत् रूप होने पर भी आप सत्यरूपी अधिष्ठान के कारण यह संसार भी सत्य जैसा प्रतीत होता है। भोक्ता एवं भोग्य के सम्बन्ध को सिद्ध करने में निमित्त इस संसार में जो इन्द्रियाँ हैं उन्हें भी आत्मज्ञानी आत्मरूप से सत्य ही मानते हैं जैसे सोने के बने कड़े, कुण्डल आदि में स्वर्णज्ञ व्यक्ति केवल स्वर्ण को ही देखता है और उन्हें नहीं छोड़ता है। उसी प्रकार से संसार आत्मा में कल्पित है और आत्मा से ही व्याप्त है ऐसा मानकर तत्त्वज्ञ जन इसे भी आत्मरूप ही मानते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत् स्वतः।
सदाभासमसत्यस्मिन् भगवन्तं भजाम तम्॥१३॥

यह जगत् अपने स्वरूप, नाम और आकृतिके रूपमें असत् है, फिर भी जिस अधिष्ठान-सत्ताकी सत्यतासे यह सत्य जान पड़ता है तथा जो इस असत्य प्रपञ्चमें सत्यके रूपसे सदा प्रकाशमान

रहता है, उस भगवान्का हम भजन करते हैं।

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया
त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः।
परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तां -
स्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः
॥१४॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

ये जना मन्यन्ते यद्भवान् सर्वभूतानामधिष्ठानमस्ति सर्वाधारोऽस्ति ते मृत्योरवहेलनं कृत्वा तच्छिरसि पदेनाक्रम्यन्ते विजयन्ते। स्वविमुखजनान्भवान्कर्मप्रतिपादिकाभिः श्रुतिभिः पशुवद्बध्नाति। ये भवता सह प्रेमसम्बन्धमनुशीलयन्ति ते न केवलमात्मानमपित्वन्यजनानपि पुनन्ति। कथमीदृक् सौभाग्यं त्वत्पराङ्मुखा लभेरन् ?

जो लोग यह मानते हैं कि आप सभी प्राणियों के अधिष्ठान हैं, सबों के आधार हैं, वे मृत्यु की अवहेलना करके, उसके मस्तक पर लात मारकर उसपर विजयी होते हैं। अपने से विमुख जनों

को आप कर्मप्रतिपादक वेदमन्त्रों के माध्यम से पशु के समान बन्धन में डाल देते हैं। जो आपके साथ मात्र प्रेमसम्बन्ध का अनुशीलन करते हैं, वे केवल स्वयं को ही नहीं अपितु अन्य जनों को भी पवित्र कर देते हैं। ऐसा सौभाग्य भला आपसे विमुख जनों को कैसे प्राप्त हो सकता है ?

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति ॥१४॥

लोग पञ्चाग्नि आदि तापोंसे तप्त हों, पर्वतसे गिरकर आत्मघात कर लें, तीर्थोंका पर्यटन करें, वेदोंका पाठ करें, यज्ञोंके द्वारा यजन करें अथवा भिन्न-भिन्न मतवादोंके द्वारा आपसमें विवाद करें, परन्तु भगवान्‌के बिना इस मृत्युमय संसार-सागरसे पार नहीं जाते।

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधर -
स्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयानिमिषाः।
वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो
विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥१५॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

कर्मादिसाधनैर्मन आद्यन्तःकरणैश्च

नेत्रादिबाह्यकरणैर्भवानग्राह्यस्तस्मादकरणस्तथापि तेषां शक्तिसंयुतो यस्माज्ज्ञानप्रकाशस्वसंवित्स्वरूपो भवान्क्रियार्थ इन्द्रियाणि नेच्छति। यथा सामन्तभूपतयः प्रकृतिभिः करं संगृह्य चक्रवर्तिनं निवेदयन्ति तथैव नृपूज्यब्रह्मेन्द्रादयो मानवीं पूजां स्वीकार्य मायाधीना भवन्तमुपासन्ते। यस्मिन् कर्मणि योजितास्ते स्वाधिकारं भुञ्जन् भवद्भीत्या तस्मिन्नैष्ठिकाः।

कर्म आदि साधनों के द्वारा, मन आदि अन्तःकरण के द्वारा, नेत्र आदि बाह्य करणों के द्वारा आप ग्रहण नहीं किये जा सकते अतएव आप अकरण हैं, फिर भी आप उनकी शक्ति से युक्त हैं क्योंकि ज्ञानप्रकाश से स्वयंवेद्य आप क्रिया के लिए इन्द्रियों की आकांक्षा नहीं करते हैं। जैसे सामन्त राजागण अपनी प्रजाओं से कर का संग्रहण करके चक्रवर्ती राजा को निवेदित करते हैं वैसे ही मनुष्यों के द्वारा पूजनीय ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता मनुष्यों के द्वारा की गयी पूजा को स्वीकार करके माया के अधीन होने से आपकी आराधना करते हैं। जिस कर्म में उन्हें लगाया गया है, वे अपने अधिकार का उपभोग करते हुए आपके भय से उन कर्म को निष्ठापूर्वक सम्पादित करते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

अनिन्द्रियोऽपि यो देव: सर्वकारकशक्तिधृक्।
सर्वज्ञ: सर्वकर्ता च सर्वसेव्यं नमामि तम्॥१५॥

जो प्रभु इन्द्रियरहित होनेपर भी समस्त बाह्य और आन्तरिक इन्द्रियकी शक्तिको धारण करता है और सर्वज्ञ एवं सर्वकर्ता है, उस सबके सेवनीय प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ।

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो
विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः।
न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवे -
द्वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः॥१६॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

स्वभावतो मुक्त ! मायातीतोऽपि सन् यदा स्वेक्षणसङ्कल्पमात्रेण क्रीडति मायया सह तदा सङ्केतेन जीवानां सूक्ष्मदेहेन्द्रियादयः प्रारब्धभोगकर्मसंस्कारयुक्ता जागृता भवन्ति। भवान् दयानिधिर्व्योमवदरिमित्रवर्जितः समः। न तेऽस्ति क्वचिन्मित्रो रिपुर्वा। वस्तुतस्त्वत्स्वरूपे वाङ्मन आदीनां गतिर्नास्ति। कार्यकारणरूपप्रपञ्चाभावे बाह्यदृष्ट्या भवान् शून्य एव किन्तु तद्दृष्टेरधिष्ठानत्वेन

भवानेकः परमसत्यः।

हे स्वभाव से ही मुक्त ! माया से अतीत होकर भी जब अपनी दृष्टि-सङ्कल्प मात्र से माया के साथ क्रीड़ा करते हैं, तब सङ्केत से ही जीवों के सूक्ष्म देह एवं इन्द्रिय तथा प्रारब्धभोग के निमित्त कर्मसंस्कार आदि जागृत हो जाते हैं। आप करुणा की खान हैं, आकाश के समान शत्रु एवं मित्र से रहित, सम हैं। आपका कोई मित्र अथवा शत्रु नहीं है। वस्तुतः आपके स्वरूप में वाणी, मन आदि की गति नहीं है। कार्य-कारणरूप प्रपञ्च का अभाव होने से बाह्य दृष्टि से आप शून्य ही हैं किन्तु उस दृष्टि का अधिष्ठान भी आप ही होने से आप ही एक परम सत्य हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

त्वदीक्षणवशक्षोभमायाबोधितकर्मभिः।

जातान् संसरतः खिन्नान्नृहरे पाहि नः पितः ॥१६॥

नृसिंह ! आपके सृष्टि-सङ्कल्पसे क्षुब्ध होकर मायाने कर्मोंको जाग्रत् कर दिया है। उन्हींके कारण हम लोगोंका जन्म हुआ और अब आवागमनके चक्करमें भटककर हम दुःखी हो रहे हैं। पिताजी ! आप हमारी रक्षा कीजिये।

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता -

स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥१७॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

भगवन्नित्यैकरसः। यदि जीवा असङ्ख्येया नित्यस्वरूपाः सर्वव्यापका भवेयुस्तदा भवादृश एव। तस्मादत्र तेषां शासितत्वं भवतः शासकत्वं कथं सम्भवेदनियन्त्रित्वाद्यस्मान्नियमनहेतवे भवत उद्भवश्च न्यूनधर्मावश्यकमस्ति। नास्त्यत्र सन्देहो यदेतानां जीवानामैक्यं वैभिन्न्यं वा भवत एव तस्माद्भवान् तेषु कारणरूपेण व्याप्तमस्ति नियमनञ्च करोति समत्वेन दुर्ज्ञेयस्वरूपवान्। ये वदन्ति ज्ञातं मयेति ते वस्तुतोऽनभिज्ञा एव विषयग्राहिणो बुद्ध्या यतः परो भवान्। मतिग्राह्यवस्तुषु यानि वस्तूनि ज्ञायन्ते मतिवैभिन्नाद्वैभिन्न्यत्वेन तस्मात्तेषां पारस्परिकविरोधो दृश्यते स्वरूपं भवतस्तस्मान्मतेः परः।

हे भगवन्! आप नित्य एवं एकरस हैं। यदि जीव भी असंख्य, नित्यस्वरूप एवं सर्वव्यापक होने लगें तब वे आपके ही समान हो जायेंगे। फिर यहां उनका शासित होना तथा आपका शासक

होना कैसे सम्भव होगा क्योंकि आप उनपर नियन्त्रण नहीं कर पाएंगे क्योंकि नियन्त्रण करने के लिए उनका आपसे उत्पन्न होना एवं आपसे न्यून गुणों से युक्त होना आवश्यक है। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि इन सभी जीवों में ऐक्य अथवा वैभिन्य होने में आप ही कारण हैं अतएव इनमें कारणरूप से आप ही व्याप्त भी हैं एवं इनका नियमन भी करते हैं क्योंकि आप समरूप तथा कठिनता से बोध होने वाले स्वरूप से युक्त हैं।

जो लोग कहते हैं कि मेरे द्वारा आपका स्वरूप जान लिया गया वे लोग वस्तुतः अनभिज्ञ ही हैं क्योंकि वे लोग विषय को ग्रहण करने वाले हैं एवं आप बुद्धि से परे हैं। जो वस्तु मति से ग्रहण हो सकें, उनमें जो जाना जाता है, मति की विभिन्नता से उनमें भी विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है, फलतः उनमें परस्पर विरोध दिखता है। अतएव आपका स्वरूप मति से परे है।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

अन्तर्यन्ता सर्वलोकस्य गीतः श्रुत्या युक्त्या चैवमेवावसेयः।
यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्नृसिंहः श्रीमन्तं तं चेतसैवावलम्बे ॥१७ ॥

श्रुति ने समस्त दृश्यप्रपञ्च के अन्तर्यामी के रूप में जिनका गान किया है, और युक्ति से भी वैसा ही निश्चय होता है। जो सर्वज्ञ, सर्वशक्ति और नृसिंह — पुरुषोत्तम हैं, उन्हीं सर्व सौन्दर्य-माधुर्य

निधि प्रभु का मैं मन-ही-मन आश्रय ग्रहण करता हूँ।

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयो -
रुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत्।
त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे
सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥१८॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

भवतो जीवो जायत इति कथने न तु परिणामत्वम्। प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि गीतायां तस्मात्पुरुषस्त्वजन्मा। तत्त्वतस्तस्यात्मरूपो भवान् वृत्तिषु न जायते। तस्मादत्र कथमुद्भवः ? अज्ञानेन। अज्ञानेन प्रकृतिपुरुषयोर्विपर्ययदृष्ट्यावलोकनेन संयोगाद्बुद्बुदवदुपादाननिमित्तजलानिलयोः। प्रकृतौ पुरुषोऽस्ति पुरुषे प्रकृतिरस्तीति विपर्ययाज्जीवसंज्ञके चेतनात्मनि नानाभावरूपगुणकल्पना भवति। यथा सिन्धौ नद्यो मधुनि पुष्परसाः समाहिता भवन्ति तथा भवति निरुपाधयः सर्वे।

आपसे जीव उत्पन्न होते हैं, इस उक्ति में यह अर्थ नहीं कि जीव

आपके परिणामस्वरूप हैं। गीता में कहते हैं कि प्रकृति एवं पुरुष, दोनों को अनादि जानो अतः पुरुष अजन्मा है। तात्त्विक रूप से जीव में आपके होने से जीवरूप से भी आप ही हैं जो वृत्तियों में जन्म नहीं लेते। फिर यहाँ उत्पत्ति कैसे कहा ? अज्ञान से। अज्ञान से प्रकृति और पुरुष में अदला बदली की दृष्टि से देखने के कारण जैसे उपादान जल एवं निमित्त वायु के संयोग से बुलबुला बन जाता है वैसे ही जीवत्व के सम्बन्ध में समझना चाहिये। प्रकृति में "यह पुरुष है" तथा पुरुष में "यह प्रकृति है", ऐसी उल्टी बुद्धि से ही जीवसंज्ञक चेतनात्मा में अलग अलग भाव, रूप तथा गुणों की कल्पना होती है। जैसे समुद्र में नदी तथा मधु में सभी पुष्पों का रस समाहित हो जाता है वैसे ही उपाधि से रहित होने पर आपमें सभी समाहित हो जाते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

यस्मिन्नुद्यद्विलयमपि यद्भाति विश्वं लयादौ
जीवोपेतं गुरुकरुणया केवलात्मावबोधे।
अत्यन्तान्तं व्रजति सहसा सिन्धुवत्सिन्धुमध्ये
मध्येचित्तं त्रिभुवनगुरुं भावये तं नृसिंहम् ॥१८॥

जीवों के सहित यह सम्पूर्ण विश्व जिनमें उदय होता है और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में विलय को प्राप्त होता है तथा भान होता है, गुरुदेव की करुणा प्राप्त होने पर जब शुद्ध आत्मा का

ज्ञान होता है, तब समुद्र में नदी के समान सहसा यह जिनमें आत्यन्तिक प्रलय को प्राप्त हो जाता है, उन्हीं त्रिभुवनगुरु नृसिंह भगवान् की मैं अपने हृदय में भावना करता हूँ।

नृषु तव मायया भ्रमममीष्ववगत्य भृशं
त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्।
कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः
सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम्॥१९॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

सर्वे जीवा भवन्मायया भ्रमन्ति भ्रमेषु पृथङ्क्त्वा त्वत्तः परतरं जन्ममृत्युचक्रे परिभ्रमन्ति मुहुर्मुहुः। विचक्षणा भ्रमबोधेन भक्त्या भवच्छरणं गृहीत्वा मुक्ता भवन्ति यतः संसृतिमोचको भवान्। शीतातपवर्षर्तुयुक्तः कालचक्रो भवतो भ्रूविलासमात्र एव भीतयति सर्वानशरणगतानेव। शरणागतेषु कथमभिनिवेशजन्यभयप्रबन्धः ?

सभी जीव आपकी माया से मोहित होकर भ्रमों में बार बार भटकते रहते हैं। अपने आप को आपसे भिन्न मानकर, आपसे दूसरा अलग समझकर बार बार जन्म एवं मृत्यु के चक्र में

भटकते रहते हैं। जो बुद्धिमान् लोग हैं वे इस भ्रम का बोध हो जाने के कारण भक्तिमय होकर आपकी शरण ग्रहण करके मुक्त हो जाते हैं क्योंकि संसारचक्र से मुक्त करने वाले आप ही हैं। ठंड, गर्मी और बारिश आदि ऋतुओं से युक्त जो कालचक्र है, वह आपके ही भौंह का विलासमात्र है। वह सबों को भयभीत करता है और विशेषकर उन्हें ही भयभीत करता है जो आपकी शरण में नहीं आये हैं। आपके शरणागतों को भला मृत्युजन्य सांसारिक भय कैसे बाधित कर सकता है ?

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका
संसारचक्रक्रकचैर्विदीर्णमुदीर्णनानाभवतापतप्तम्।
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम्॥१९॥

नृसिंह ! यह जीव संसार-चक्रके आरेसे टुकड़े-टुकड़े हो रहा है और नाना प्रकारके सांसारिक पापोंकी धधकती हुई लपटोंसे झुलस रहा है। यह आपत्तिग्रस्त जीव किसी प्रकार आपकी कृपासे आपकी शरणमें आया है। आप इसका उद्धार कीजिये।

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः।
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं

वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ॥२० ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

अनादे ! जितेन्द्रिया जितप्राणा यतयोऽपि स्वगुरोश्चरणमपहाय दुर्निग्रहं मनो वशीकृतुमुद्योगयन्ति तदा साधने निष्फलीभूताः। यज्ञिनोऽपि न मुक्ताः स्युर्न मुक्ता योगिनस्तथा। तापसा अपि नो मुक्ता गुरुतत्त्वात्पराङ्मुखा इति गुरुगीतायाम्। विमुखा खिन्नमनस्कास्ते विपत्तौ पतन्ति यथा सिन्धावकर्णधरा वणिजस्तस्माद्गुरोः कृपा गरीयसी।

हे अनादि भगवन् ! जिन्होंने अपने प्राण तथा इन्द्रियों को जीत लिया है, ऐसे यतिजन भी अपने गुरु के चरणों को छोड़कर कठिनाई से वश में किये जाने वाले मन को जब वश में करने को उद्यत होते हैं तब उसके साधन में निष्फल हो जाते हैं। गुरुगीता में कहते हैं कि यज्ञ करने वाले भी मुक्त नहीं होते, योगीजन भी मुक्त नहीं होते। तपस्वी भी मुक्त नहीं होते यदि वे गुरुतत्त्व से विमुख हो गये हैं। जो विमुख हो जाते हैं, वे खिन्न मानसिकता से युक्त होकर उसी प्रकार विपत्ति में पड़ते हैं जैसे समुद्र में बिना कर्णधार के व्यापारीजन। अतएव गुरु की कृपा बड़ी (महत्त्वपूर्ण) है।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

यदा परानन्दगुरो भवत्पदे पदं मनो मे भगवँल्लभेत।
तदा निरस्ताखिलसाधनश्रम: श्रयेय सौख्यं भवत: कृपात: ॥२० ॥

परमानन्दमय गुरुदेव ! भगवन् ! जब मेरा मन आपके चरणोंमें स्थान प्राप्त कर लेगा, तब मैं आपकी कृपासे समस्त साधनोंके परिश्रमसे छुटकारा पाकर परमानन्द प्राप्त करूँगा।

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथै -
स्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे।
इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां
सुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥२१ ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

अखण्डानन्दशरणागतात्मा भवान्। त्वामृते स्वजनपुत्रशरीरस्त्रीद्रविणहर्म्यवसुधासुरथादिभिः किं प्रयोजनम् ? सत्यसिद्धान्तमेनमज्ञात्वा स्त्रीपुंभिराबद्धा विषयिनो भौतिकसुखेषु रमन्ति ते संसारे किं सुखकारिणं वीक्षन्ति ?

आप अखण्ड आनन्दरूप एवं शरणागतों की आत्मा हैं। आपको छोड़कर स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, महल, पृथ्वी, प्राण तथा रथ आदि से क्या प्रयोजन ? इस सत्य सिद्धान्त को न जानकर स्त्री-पुरुष के सम्बन्धादि में ही बन्धे हुए जो विषयी जन भौतिक सुखों में ही रमण करते हैं, वे भला संसार में कौन से सुखकारी तत्त्व को देखते हैं ?

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका
भजतां हि भवान् साक्षात्परमानन्दचिद्घनः।
आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदारसुतादिभिः ॥२१॥

जो आपका भजन करते हैं, उनके लिये आप स्वयं साक्षात् परमानन्दचिद्घन आत्मा ही हैं। इसलिये उन्हें तुच्छ स्त्री, पुत्र, धन आदिसे क्या प्रयोजन है ?

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदा -
स्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः।
दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे
न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥२२॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

घृणाभयाद्यष्टपाशविनिर्मुक्ता ऐश्वर्यधनविद्यायोनितपोदम्भरहिताः सत्पुरुषा धरण्यां जङ्गमतीर्थकल्पा यस्मात्तेषां हृदि भगवच्चरणारविन्दसन्निधानमस्ति। वैकुण्ठप्रियसत्पुरुषचरणोदकमपि पापतापनाशनं करोति। नित्यानन्दात्मभगवन् ! ये भवति समर्पितधियस्ते जीवानां विवेकधैर्यशमदमादिनाशहेतुजालेषु देहगेहेष्वासक्ता न पुनर्भवन्ति। ते भवत एव।

घृणा, भय आदि अष्टपाश से विनिर्मुक्त, ऐश्वर्य, धन, विद्या, जाति एवं तपस्या के दम्भ से रहित सत्पुरुष पृथ्वी में चलते फिरते तीर्थ के समान हैं क्योंकि उनके हृदय में आप भगवान् के चरणकमलों का सान्निध्य है। नारायण के प्रिय (अथवा जिन्हें नारायण प्रिय हैं, ऐसे) सत्पुरुषों का चरणोदक भी पाप-ताप का नाश कर देता है। हे नित्यस्वरूपी आनन्दात्मा भगवन् ! जो आपमें अपनी मति का समर्पण कर चुके हैं, वे जीव विवेक, धैर्य, शम-दमादि का नाश करने वाले देह-गेह के जाल में पुनः नहीं फंसते हैं, वे तो आपके ही हो जाते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

मुञ्चन्नङ्गतदङ्गसङ्गमनिशं त्वामेव सञ्चिन्तयन्
सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्।
नित्यं तन्मुखपङ्कजाद्विगलितत्वत्पुण्यगाथामृत-
स्रोतःसम्प्लवसंप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत्॥२२॥

मैं शरीर और उसके सम्बन्धियोंकी आसक्ति छोडक़र रात-दिन आपका ही चिन्तन करूँगा और जहाँ-जहाँ निरभिमान सन्त निवास करते हैं, उन्हीं-उन्हीं आश्रमोंमें रहूँगा। उन सत्पुरुषोंके मुख-कमलसे निःसृत आपकी पुण्यमयी कथा-सुधाकी नदियोंकी धारामें प्रतिदिन स्नान करूँगा और नृसिंह ! फिर मैं कभी देहके बन्धनमें नहीं पडूँगा।

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं
व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक्।
व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया
भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान्॥२३॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

मृत्तिकानिर्मितो घटो यथा मृत्स्वरूप एव तथा
सन्निर्मितजगदपि सदेव न

युक्तमेतत्कार्यकारणनिर्देशभेदत्वादयोनिजयोनिजानादिसादिभेदत्वात्। न केवलं भेदनिषेधहेतवेऽपितु जनकसुतादिवत्कार्यकारणैकरूपतयापि वैभिन्नव्यभिचारः। न निमित्तं कारणेन चेदुपादानं गृह्यते कुण्डलस्वर्णवत्तर्हि रज्जुसर्पबुद्धिवदसिद्ध इति कार्यासत्यता कारणसत्ये सत्यपि। रज्जुसर्पबुद्धावविद्याविक्षेपोऽस्ति कथ्यते यद्यविद्यासद्वस्तुसंयोगाज्जगद्भूयते तस्मान्नामरूपात्मकं जगत्तथैवाविद्यासत्संयोगजन्यरज्जुसर्पवन्मिथ्यास्ति नास्त्यत्र तर्कः। व्यवहारेऽसिद्धिश्चाप्यपारमार्थिकत्वात्। व्यावहारिके कालदृष्ट्यानादिर्भ्रमोऽज्ञानिनो पतन्ति मुहुर्मुहुरन्धपरम्परया। कर्मप्रारब्धं सत्यमिति वदन्ति याः श्रुतयस्ता भ्रमेषु योजयन्ति कर्मजडान्ये नानुभूयन्ते यच्छ्रुतयः कर्तव्ययोजनदक्षा न तु नित्यवादिन्य इत्यर्थः ।

मिट्टी से बना घड़ा जैसे मृत्तिकारूप ही होता है, वैसे ही सत् से बना हुआ जगत् भी सत् ही है, यह बात सही नहीं है क्योंकि कार्य एवं कारण में निर्देश का भेद है। दोनों तुलनाओं में अयोनिज एवं योनिज, अनादि एवं सादि का भेद है। केवल भेद के निषेध हेतु ऐसा कहा जाता तो भी उपयुक्त नहीं क्योंकि जैसे पितारूपी कारण का कार्य पुत्र होने पर भी दोनों में वैभिन्न का व्यभिचार है, वैसे ही यहां भी। यदि कहें कि यहां निमित्त कारण

नहीं, अपितु उपादान कारण की बात है, जैसे कुण्डल एवं स्वर्ण में है तब भी रस्सी एवं सर्प की बुद्धि के समान यह बात असिद्ध ही हो जायेगी जैसे कारण के सत्य होने पर भी यहाँ कार्य असत्य हो गया। यदि यह कहा जाये कि रस्सी और सांप की बुद्धि वाले उदाहरण में अविद्या का विक्षेप हो गया है तब तो अविद्या एवं सद्वस्तु के संयोग से ही जगत् उत्पन्न हुआ है, अतएव नाम - रूपात्मक जगत् भी उसी प्रकार से अविद्या एवं सद्वस्तु के संयोग से जन्य रस्सी एवं सांप के समान मिथ्या ही है, इसमें कोई तर्क नहीं। व्यवहार में भी यदि कहें तो जगत् की सत्यसिद्धि नहीं क्योंकि उसकी पारमार्थिक सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। व्यवहारपटल में कालदृष्टि से जगत् का कोई आदि ही नहीं एवं इस भ्रम में अन्धी परम्परा के समान अज्ञानीजन बार बार गिरते रहते हैं। कर्मप्रारब्ध सत्य है, ऐसी जो श्रुतियाँ कहती हैं, वे मात्र उन्हीं कर्मजड़ों को भ्रमित करती हैं जो इस बात का अनुभव नहीं कर पाते कि श्रुतियाँ केवल कर्तव्यकर्म में लगाने के लिये ऐसा कहती हैं, वे कर्म को नित्य नहीं बताती हैं, ऐसा अर्थ है।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

उद्भूतं भवत: सतोऽपि भुवनं सन्नैव सर्प: स्रज:
कुर्वत्कार्यमपीह कूटकनकं वेदोऽपि नैवंपर:।
अद्वैतं तव सत्परं तु परमानन्दं पदं तन्मुदा
वन्दे सुन्दरमिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम्॥२३॥

मालामें प्रतीयमान सर्पके समान सत्यस्वरूप आपसे उदय होनेपर भी यह त्रिभुवन सत्य नहीं है। झूठा सोना बाजारमें चल जानेपर भी सत्य नहीं हो जाता। वेदोंका तात्पर्य भी जगत्की सत्यतामें नहीं है। इसलिये आपका जो परम सत्य परमानन्दस्वरूप अद्वैत सुन्दर पद है, हे इन्दिरावन्दित श्रीहरे ! मैं उसी की वन्दना करता हूँ। मुझ शरणागत को मत छोडिये।

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधना -
दनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे।
अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथै -
र्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥२४॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

प्राक्सर्गे न जगन्न पश्चाद्विसर्गस्यैकरसे परमात्मनि मध्येऽपि मिथ्यैव प्रतीयते। श्रुतिभिरुद्गीयत उपमया मृदि लौहे स्वर्णे वा घटशस्त्रकुण्डलादयो यथोपाधिमात्र एव वस्तुतस्तत्त्व एव तथा परमात्मनि वर्णितञ्जगन्नाममात्र एव।

इस संसार की स्थिति उत्पत्ति से पहले एवं प्रलय के बाद नहीं है। मध्य में भी एकरस परमात्मा में यह मिथ्या ही प्रतीत होता

है। श्रुतियों के द्वारा उपमाओं से यह कहा जाता है कि जैसे मिट्टी, लोहे, सोने आदि में घड़ा, शस्त्र, कुण्डल आदि नाममात्र का ही है, वस्तुतः उनमें मिट्टी, लोहा, सोना आदि तत्त्व ही हैं, ऐसे ही परमात्मा में वर्णित यह जगत् भी नाममात्र का ही है।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

मुकुटकुण्डलकङ्कणकिङ्किणीपरिणतं कनकं परमार्थतः।
महदहङ्कृतिखप्रमुखं तथा नरहरे न परं परमार्थतः॥२४॥

सोना मुकुट, कुण्डल, कङ्कण और किङ्किणीके रूपमें परिणत होनेपर भी वस्तुतः सोना ही है। इसी प्रकार नृसिंह ! महत्तत्त्व, अहङ्कार और आकाश, वायु आदिके रूपमें उपलब्ध होनेवाला यह सम्पूर्ण जगत् वस्तुतः आपसे भिन्न नहीं है।

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्
भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः।
त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो
महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः॥२५॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

मायायाच्छादितो जीवोऽविद्यामाचिनुते तदा

स्वरूपभूतानन्दादिगुणा अपहता भवन्ति। त्रिगुणजन्यवृत्तिष्विन्द्रियदेहेष्वाबद्धस्तेष्वात्मनीव रमते। तेषां जन्ममृतिसंसृतावात्मनो जन्ममृतिरिति मन्यते। यथा सर्पस्त्वचि न लिप्तो निर्मुक्त एव तथा भवानप्यविद्याया निर्मुक्तः। भगयुक्तो भगवान् भगे स्थितो भवानपरिमितभगयुक्त ऐश्वर्यधर्मयशःश्रीज्ञानवैराग्यक्षेत्रे देशकालवस्तुभिर्न परिमितः।

जब माया से ढका हुआ जीव अविद्या को ग्रहण करता है तब उसके स्वरूपजन्य आनन्द आदि गुण छिप जाते हैं। त्रिगुणों से उत्पन्न वृत्तियों में, इन्द्रिय तथा देह आदि में बन्धा हुआ वह जीव उनमें अपनत्व रखता हुआ रमा रहता है। उन देहादि के जन्म-मरण में अपना जन्म-मरण मानता है। जैसे सर्प अपनी त्वचा (केंचुल) से लिप्त नहीं होता, निर्मुक्त ही रहता है, वैसे ही आप भी अविद्या से निर्मुक्त हैं। सभी सिद्धियों से युक्त, ऐश्वर्यवान्, परम सिद्धपद में स्थित आप परिमाणरहित ऐश्वर्य से युक्त, ऐश्वर्य, धन, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्य के क्षेत्र में देश, काल तथा वस्तु आदि से परिमित नहीं होने वाले हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गणगता कालस्वभावादिभि -

र्भावान् सत्त्वरजस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून्।
मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्दयन्त्यातुरं
माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वामेव तां वारय॥२५॥

प्रभो ! आपकी यह माया आपकी दृष्टिके आँगनमें आकर नाच रही है और काल, स्वभाव आदिके द्वारा सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी अनेकानेक भावोंका प्रदर्शन कर रही है। साथ ही यह मेरे सिरपर सवार होकर मुझ आतुरको बलपूर्वक रौंद रही है। नृसिंह ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप ही इसे रोक दीजिये।

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा
दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः।
असुतृपयोगिनामुभयतोप्यसुखं भगव -
न्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः॥२६॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

जना यतिरपि सन् यदि हृद्देश आबद्ध विषयवासनानां विदूरीकरणे न लग्नास्तदा तेभ्योऽसाधकेभ्यो भवान्तथैव दुर्लभो यथा कण्ठबद्धमणिं विस्मृत्य जनान्वेषयन्ति। इन्द्रियतृप्तिरतसाधका अविरक्तविषया जीवने पश्चादपि

दुःखार्णवे मग्ना भवन्ति यस्मान्न ते साधका दम्भिन एव। अनिवृत्तमृत्यवस्ते लोकरञ्जनद्रविणसङ्ग्रहे रता भगवत्स्वरूपाबोधका धर्मकर्मोल्लङ्घनदोषान्निरयगामिनो भवन्ति।

लोग संन्यासी होने पर भी यदि हृदय में बन्धी हुई विषय-वासनाओं को दूर करने में लगे हुए नहीं हैं, तब उन असाधकों के लिये आप वैसे ही दुर्लभ हैं जैसे लोग अपने ही गले में बन्धी मणि को भूलकर उसे खोजते रहते हैं। अपनी इन्द्रियों की तृप्ति में लगे हुए साधकजन, जो विषयों से विरक्त नहीं हुए हैं, वे इस जीवन में तथा जीवन के पश्चात् भी दुःख के समुद्र में मग्न हो जाते हैं क्योंकि वे साधक नहीं, दम्भी हैं। उनका मृत्युजन्य भय अभी गया नहीं है, सांसारिक जनों को प्रसन्न करने तथा धन आदि के सङ्ग्रह में लगे हुए ये लोग आपके स्वरूप को न जानते हुए धर्म-कर्म के उल्लंघन से उत्पन्न दोष के कारण नरकगामी होते हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

दम्भन्यासमिषेण वञ्चितजनं भोगैकचिन्तातुरं
सम्मुह्यन्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम्।
आज्ञालङ्घिनमज्ञमज्ञजनतासम्माननासन्मदं
दीनानाथ दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहि माम्॥२६॥

प्रभो ! मैं दम्भपूर्ण संन्यासके बहाने लोगोंको ठग रहा हूँ। एकमात्र भोगकी चिन्तासे ही आतुर हूँ तथा रात-दिन नाना प्रकारके उद्योगोंकी रचनाकी थकावटसे व्याकुल तथा बे-सुध हो रहा हूँ। मैं आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता हूँ, अज्ञानी हूँ और अज्ञानी लोगोंके द्वारा प्राप्त सम्मानसे 'मैं सन्त हूँ' ऐसा घमण्ड कर बैठा हूँ। दीनानाथ, दयानिधान, परमानन्द ! मेरी रक्षा कीजिये।

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयो -
र्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः।
अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरम्परया
श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥२७॥

निग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

भगवत्तत्त्वबोधितो जनो न कर्मविपाके पापपुण्यकर्मफलभोक्ता भवति न वेत्ति सुखदुःखे निस्तरति भोक्ताभावाद्भोग्यभावात्परः प्रेरयिता भावे तिष्ठति। देहाभिमानिने कृतानि विधिनिषेधप्रतिपादकशास्त्राण्यपि तस्मान्निवृत्तानि न ध्यातव्यानि च। भगवत्स्वरूपज्ञानहीनो

जनोऽपि प्रतियुगेषु प्रायोजिता भगवल्लीलाचरितकथाः
श्रृण्वन् ताः स्वहृदि स्थापयति तदाचिन्त्यदिव्यगुणामृताब्धे !
स प्रेमी प्रेमगौरवाद्विधिनिषेधनिर्मुक्तो भूत्वा सुखदुःखे
विहायातीतो भवति यस्माद्भवानेव तस्य परमैका गतिः।

भगवान् के तत्त्व का जिसे बोध हो गया है, ऐसा व्यक्ति कर्मविपाक में पाप-पुण्यरूपी कर्मफल का उपभोक्ता नहीं होता है। वह सुख एवं दुःख को भी नहीं जानता तथा भोक्ताभाव एवं भोग्यभाव से उद्धृत होकर प्रेरकभाव में स्थित हो जाता है। देहाभिमानी व्यक्ति के निमित्त रचे गये विधि-निषेध के प्रतिपादक शास्त्र भी उस व्यक्ति से निवृत्त होकर अध्यातव्य हो जाते हैं। भगवान् के स्वरूप के ज्ञान से रहित व्यक्ति भी प्रत्येक युग में की गयी भगवान् की लीला एवं चरित्र कथा को सुनता हुआ उनको अपने हृदय में स्थापित करता है, तब हे अचिन्त्य और दिव्य गुणों के अमृतसागर ! वह प्रेमी प्रेम की गुरुता के कारण विधि-निषेध से मुक्त होकर सुख-दुःख को छोड़कर उनसे अतीत हो जाता है क्योंकि आप ही उसकी परम एवं एकमात्र गति हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

अवगमं तव मे दिशि माधव
स्फुरति यन्न सुखासुखसङ्गमः।

श्रवणवर्णनभावमथापि वा
न हि भवामि यथा विधिकिङ्करः ॥२७॥

माधव ! आप मुझे अपने स्वरूपका अनुभव कराइये, जिससे फिर सुख-दु:खके संयोगकी स्फूर्ति नहीं होती। अथवा मुझे अपने गुणोंके श्रवण और वर्णनका प्रेम ही दीजिये, जिससे कि मैं विधि-निषेधका किङ्कर न होऊँ।

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः।
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतय -
स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥२८॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका

स्वर्गादीनामधिपा ब्रह्मेन्द्रादयोऽपि भवतः पारं न प्राप्नुवन्त आश्चर्यमिति भवानपि नैव वेत्ति। कुतोऽनन्तमनन्तस्येति निग्रहागमेषु। यथा रेणवो वातवेगेन खमण्डले परिभ्रमन्ति तथैव भवतः कालवेगेनोत्तरोत्तरदशगुणितानि सप्तावरणान्यसङ्ख्यब्रह्माण्डसंयुतानि सहैव परिभ्रमन्ति। कथं भवतः परिमितिर्ज्ञायते ? न वयं श्रुतयो जानीमो स्वरूपं ते

निषेधाज्ञयात्मनिषेधं कृत्वा यजामहे।

स्वर्ग आदि दिव्य लोकों के अधिपति ब्रह्मा, इन्द्र आदि भी आपका पार न प्राप्त कर सके। आश्चर्य तो यह है कि आप भी स्वयं अपना पार नहीं जानते। निग्रहागमों में उक्ति है कि अनन्त का अन्त भला कैसे प्राप्त हो सकता है ? जैसे धूल के कण वायु के वेग से आकाशमण्डल में घूमते हैं, वैसे ही आपके काल के वेग से एक दूसरे से उत्तरोत्तर दश गुणा बड़े सप्तावरण असंख्य ब्रह्माण्ड से युक्त होकर साथ ही घूमते रहते हैं। ऐसे में आपका परिमाण कैसे जाना जा सकता है ? हम श्रुतियाँ भी आपका स्वरूप नहीं जानती हैं। सब कुछ का निषेध करते करते, अन्त में अपना भी निषेध करके आपकी अर्चना करती हैं।

श्रीश्रीधरस्वामिकृता नारसिंहीटीका

द्युपतयो विदुरन्तमनन्त ते
न च भवान्न गिरः श्रुतिमौलयः।
त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो
जय जयेति भजे तव तत्पदम्॥२८॥

हे अनन्त ! ब्रह्मा आदि देवता आपका अन्त नहीं जानते, न आप ही जानते और न तो वेदोंकी मुकुटमणि उपनिषदें ही जानती हैं; क्योंकि आप अनन्त हैं। उपनिषदें 'नमो नमः', 'जय हो, जय

हो' यह कहकर आपमें चरितार्थ होती हैं। इसलिये मैं भी 'नमो नमः', 'जय हो' 'जय हो' यही कहकर आपके चरण-कमलकी उपासना करता हूँ।

सृष्टिस्थितितिरोधाने प्रेरयाम्यहमेव हि।
ब्रह्माणञ्च तथा विष्णुं रुद्रं वै कारणात्मकम्॥
मद्भयाद्वाति पवनो भीत्या सूर्यश्च गच्छति।
इन्द्राग्निमृत्युवस्तद्वत्साहं सर्वोत्तमा स्मृता॥
देवीभागवते देवीवाक्यं स्मृत्वा मया कृता।
एषा सर्वोत्तमाटीका वैष्णवी श्रुतिसम्मता॥

ब्रह्मा को सृष्टि करने, विष्णु को जगत् का पालन करने और कारणरूप रुद्र को संहार करने के लिये मैं ही प्रेरणा देती हूँ। वायु मेरे भय से प्रवाहित होता है और सूर्य मेरे भय के कारण ही निरन्तर गति करता है। उनके ही समान इन्द्र, अग्नि और यम भी मेरे भय से अपने अपने कार्य सम्पन्न करते हैं, अतएव मैं "सर्वोत्तमा" कही गयी हूँ। देवीभागवत में इस देवीवाक्य को स्मरण करके मेरे द्वारा यह वैष्णवी श्रुतियों से समर्थित (वेदस्तुति पर) सर्वोत्तमाटीका लिखी गयी है।

|| इति श्रीमद्भागवतोक्ते वेदस्तुतौ
श्रीमन्निग्रहाचार्यकृता सर्वोत्तमाटीका सम्पूर्णा ||

| इस प्रकार से श्रीमद्भागवत में कहे गये वेदस्तुति पर श्रीनिग्रहाचार्य के द्वारा लिखी गयी सर्वोत्तमाटीका पूर्ण हुई |

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु